18

पञ्चकोश विवेक

ध्यान दें:

वेदान्त का अन्यतम विभाग अद्वैत वेदान्त है। उसके प्रवर्तक आदिशङ्काराचार्य हैं। अद्वैतवेदान्त वेदान्त का मर्मभूत विषय है जीवात्मा तथा परमात्मा का ऐक्य। इस विषय को सुलभता से समझ नहीं सकते है। क्योंकि आत्मविचार को समझना अत्यन्त ही कठिन है। इस लोक में सत्य वस्तु क्या है इसका वेदान्त शास्त्र के द्वारा अन्वेषण होता है। उसके विषय में आगमशास्त्र ही अन्तिम प्रमाण होते हैं। आगम कहते हैं कि ब्रह्म ही सत्य है। उस ब्रह्मरूपी एक वस्तु के अलावा सब असत्य है। इसलिए शङ्कराचार्य जी ने कहा है ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या यही वेदान्त शास्त्र का तात्पर्य है। ब्रह्म ही अद्वैत होता है वहाँ पर द्वैत का स्थान ही नहीं होता है। लेकिन प्रत्यक्ष प्रतीति के द्वारा द्वैत का ही मुख्य भान होता है। द्वैत वास्तविक रूप से कुछ भी नहीं होता है वह केवल समझाने के लिए कल्पना रूप से शास्त्रों में मिलता है। आचार्य का यह वचन हैं कि अज्ञानकल्पितभेदनिवृत्तिपरत्व शास्त्रों का होता है। फिर भी आत्मतत्व को अच्छी प्रकार से जानने के लिए बहुत सारे उपाय शास्त्रों में स्वीकार किये गये हैं। उनमें से एक उपाय है पञ्चकोश की कल्पना। अध्यारोपवाद तथा अपवाद के द्वारा यह निष्प्रपञ्च प्रपञ्चित होता है इस प्रकार का न्याय यहाँ पर आधार होता है।

उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन से आप सक्षम होंगे;

- अध्यारोप के स्वरूप को समझने में;
- अपवाद का तात्पर्य समझने में;
- आत्मा तथा अनात्मा का विवेक ज्ञान प्राप्त करने में;
- कोश कितने होते हैं यह ज्ञान प्राप्त करने में;
- अन्नमायादि कोशों के लक्षणों को जान पाने में;
- ब्रह्म के सोपाधिक तथा निरुपाधिक भेद को जान पाने में;
- अरुन्धति नक्षत्र आदि दर्शन के द्वारा ब्रह्म के प्रतिपादन को समझ पाने में;

ध्यान दें:

18.1) अध्यारोप तथा अपवाद वाद

वस्तु में अवस्तु का आरोप ही अध्यारोप का लक्षण है, जैसे असर्पभूत रस्सी में सर्प का आरोप होता है। कल्पना को ही आरोप कहते हैं। रस्सी को देखकर के रूप साम्य से यह सर्प है इस प्रकार का ज्ञान होता है। वस्तुत: वहाँ पर रस्सी ही होती है न की सर्प। रस्सी सर्प की भ्रान्ति से अधिष्ठान होती है। अधिष्ठान रज्जु अंश का अज्ञान ही सर्प प्रतीति का कारण होता है। प्रकृत दृष्टान्त में वस्तु रज्जु होती है तथा अवस्तु सर्प होता है। सिद्धान्त में तो ब्रह्म ही वस्तु होता है तथा अज्ञानादि सकलजगत् समूह अवस्तु होता है। रज्जु को देखकर के सर्प की भ्रान्ति जिस प्रकार से होती है उसी प्रकार सर्प को देखकर के भी रज्जु की भ्रान्ति होती है। वहाँ पर कारण साम्य जानना चाहिए। इस प्रकार से वस्तुओं का परस्पर अध्यास होता है। रज्जु सर्प के सिर तथा पूँछ नहीं होती है। फिर भी दोनों की कल्पना रस्सी में की जाती है। इसी प्रकार सर्प के जो जो धर्म होते हैं वे सभी रस्सी मे कल्पित किये जाते है। वहाँ पर अज्ञान कारण होता है।

अज्ञान अनिर्वचनीय त्रिगुणात्मक तथा ज्ञान निवर्त्यक रूप में होता है।अज्ञान की निवृत्ति ज्ञान के द्वारा ही होती है। जिस प्रकार से सूर्योदय होने पर अन्धकार की निवृत्ति होती है उसी प्रकार ज्ञान होने पर अज्ञान की निवृत्ति होती है। तब वास्तविक रस्सी पदार्थ का ज्ञान उत्पन्न होता है। यह ही अपवाद कहलाता है। सत्य वस्तु को असत्य वस्तु में परिणित होने पर उस असत्य वस्तु का निरास हो जाता है। इस दृष्टान्त में वस्तु रज्जु होती है। वह असत्यभूत सर्पाकार में परिणित होती है तब उस असत्य वस्तु का निरास हो जाता है। सिद्धान्त तो ब्रह्म जगताकार में प्रतीत होता है प्रतीत असत्य वस्तु का जगत निरास हो जाता है। नेह नानास्ति किञ्चित इस श्रुति के द्वारा ब्रह्म में नानाभूत अद्वैत का निषेध किया जाता है।

मुक्ति के लिए कहाँ से किस प्रकार का उपाय होता है इस प्रकार की जिज्ञासा सभी के मन में उत्पन्न होती है। संसार बन्धनों से मुक्ति सभी चाहते हैं। और मुक्ति का तो एक ही उपाय है ब्रह्मज्ञान। जैस पाक् की अग्नि के ज्ञान के बिना भोजन सिद्ध नहीं होता है उसी प्रकार ब्रह्मज्ञान के बिना मोक्ष सम्भव नहीं होता है, इस प्रकार से आचार्य के द्वारा आत्मबोध प्रकरण में कहा गया है। ब्रह्मज्ञान सुलभ नहीं है। उस के निर्गुणत्व से तथा निर्धर्मकत्व से वह किसी भी प्रमाण का विषय नहीं होता है। इसलिए मुमुक्षुओं के लिए ब्रह्मज्ञान सम्पादन में सविशेष ब्रह्मज्ञान के द्वारा निर्विशेष का ज्ञान होता है। इस प्रकार से क्रमश: सत्यज्ञानानन्तलक्षण के द्वारा यथार्थ तत्व के प्रति जाना जाता है। और पहले ब्रह्मजिज्ञासा होने पर बुद्धिगोचर के लिए सविशेष का प्रतिपादन करके अन्त में उसका निषेध किया जाता है। इस क्रम से यह अध्यारोपवाद न्याय कहलाता है।

भले ही सृष्टि, स्थिति तथा लय, ब्रह्म से ही होते हैं। फिर भी वे वस्तुत: ब्रह्म के स्वरूप नहीं होते है। उनको अन्त में ही जाना जा सकता है। मोक्ष मार्ग के प्रथम सोपान में अध्यारोपकाल में वस्तुस्थिति समझ में नहीं आती है। ब्रह्म को सृष्टिकर्ता मानकर के उससे कर्तृत्व निषेध कार्य किया जाता है। साधारण मानव तथा अज्ञानी ब्रह्म से भिन्न स्वतन्त्र कुछ और जगत् होता है इस प्रकार से चिन्तन करते है। उनके लिए जगत् का निमित्त तथा उपादान कारण ब्रह्म ही है इस प्रकार से प्रदिपादन करना होता है। इस प्रकार से जगत की स्वतन्त्र सत्ता नहीं होती है। ब्रह्म में ही उसकी स्थिति होती है, इस प्रकार से दृढ़ अवबोध उत्पन्न होता है। उसस निधर्मक ब्रह्म में जगत् का कर्तृत्व सम्भव नहीं होता है तथा कार्यकारणरहित उसमें जगत् का कारण भी सम्भव नहीं होता है। इस प्रकार से कल्पितविचारों के निषेधों के द्वारा निर्विशेष ब्रह्म में ही गति होती है।

इस प्रकार से बुद्धि का स्थैर्य सम्पादन के द्वारा लक्ष्यप्राप्ति तक जो कुछ भी परिकल्पना करके

ध्यान दें:

साक्षात्कार होने पर लक्ष्य में परिकल्पित का निषेध करना चाहिए। यह ही अध्यारोप तथा अपवाद का प्रयोजन है। और ब्रह्मत्व को समझने पर कहे गये पञ्चकोशों की भी ब्रह्म में ही कल्पना करनी चाहिए। ब्रह्म वहाँ पर अधिष्ठान तथा पञ्चकोश आरोपित होते हैं। पञ्चकोशों में भी सर्वप्रथम ब्रह्मत्वबुद्धि की कल्पना करके फिर उसके द्वारा यथार्थ ब्रह्म में गति होती है।

इस विषय के स्पष्टीकरण के लिए अरुन्धती न्याय का सहारा लिया जाता है। विवाह के बाद रात्रिकाल में अपनी पत्नी बाहर लाकर के पति अरुन्धती नक्षत्र का दर्शन करवाता है। अरुन्धती नक्षत्र अत्यन्त सूक्ष्म होता है। इसलिए उसका दर्शन भी कठिन होता है। पति तो पहले ही देख लेता है। लेकिन भार्या पहले कभी नहीं देखती है। इसलिए उसके लिए अत्यन्त सूक्ष्म अरुन्धती नक्षत्र का दर्शन सुलभ नहीं होता है। उसको अरुन्धती नक्षत्र दिखाने के लिए भर्ता कोई उपाय करता है। वह उपाय यह है कि भर्ता अपनी अङ्गुली को दिखाकर के भार्या से कहता हैं कि ऊपर अत्यन्त प्रकाशमान स्थूलरूप में दिखाई दे रहा है क्या वह आपको दिख रहा है, क्या? देखकर के भार्या पूछती है कि क्या वह अरुन्ध ती नक्षत्र है। तब वह कहता हैं कि वह अरुन्धती नक्षत्र नहीं है। उसके पास में एक और लघु प्रकाशमान नक्षत्र दिखाई दे रहा है, क्या? भार्या कहती है हाँ, क्या वह अरुन्धती नक्षत्र है? भर्ता कहता है वह नहीं लेकिन उसके पास में जो सबसे छोटा नक्षत्र दिखाई दे रह है वह अरुन्धती नक्षत्र है। इस प्रकार से स्थूल नक्षत्रों को पहले दिखाकर के फिर उससे छोटे नक्षत्रों को दिखाकर के उसके बाद में सबसे लघु नक्षत्र को दिखाना चाहिए। इस प्रकार से जिन नक्षत्रों का दर्शन सुलभ होता सबसे पहले उनका दर्शन करवाकर के उसके बाद फिर एक एक नक्षत्र का निरास करके अन्त में मुख्य अरुन्धती नक्षत्र का प्रदर्शन करवाना चाहिए। इस उपाय से दुर्विज्ञेय भी सुविज्ञेय हो जाता है।

इस प्रकार से दुर्विज्ञेय आत्मा का उपदेश देने के लिए शास्त्र अरुन्धती नक्षत्र के निर्देशन के समान लोकबुद्धि का अनुसरण करता है। अन्नमय शरीर ही आत्मा है इस प्रकार से मूढ लोग सोचते है। उनके अनुसार उनको समझाने के लिए आत्मा अन्नमय होता है इस प्रकार से उनको समझाया जाता है। अन्नमय आत्मा होता है यह बोध होने पर उसका वहाँ पर निरास किया जाता है। उसके बाद यह समझाया जाता है कि अन्नमय आत्मा नहीं हो सकती है, अपितु उसके अन्तर्गत विद्यमान प्राणमय कोश ही आत्मा होती है फिर उसके बाद में इसका भी निरास करवाकर के यह कहा जाता है की प्राणमय कोश भी आत्मा नहीं होती है अपितु वर्तमान मनोमय कोश ही आत्मा है। फिर इसी क्रम में उसके अन्दर विद्यमान विज्ञानमय कोश और फिर आनन्दमय कोश आत्मा होती है इस प्रकार से समझाया जाता है। और अन्त में पञ्चकोश भी आत्मा होने योग्य नहीं है ऐसा कहकर के यथार्थ आत्मस्वरूप का बोध करवाया जाता है। उसका आगे वर्णन किया जा रहा है।

पाठगत प्रश्न 18.1

1. वेदान्त का विषय क्या है?
2. आत्मविषय में अन्त्य प्रमाण क्या है?
3. वेदान्तशास्त्र का तात्पर्य क्या है?
4. अध्यारोप तथा अपवाद वाद के द्वारा प्रपञ्च क्या होता है?
5. अध्यारोप किसे कहते हैं?
6. सर्प भ्रान्ति में अधिष्ठान क्या है?

ध्यान दें:

7. सिद्धान्त वस्तु क्या है?
8. सिद्धान्त में अवस्तु क्या है?
9. अज्ञान किसे कहते हैं?
10. अपवाद किसे कहते हैं?
11. मुक्ति का एक ही उपाय क्या है?
12. किस न्याय के द्वारा दुर्विज्ञेय आत्मा का प्रतिपादन किया जाता है?

18.2) पञ्चकोश

अनात्मविषयों के बाद ही आत्मस्वरूप का विवेचन किया गया है। वहाँ पर शास्त्र में अनेक उपाय बताए गये हैं। इससे पूर्वपाठ में उसके लिए अवस्थात्रय का विचार तथा शरीरत्रय का विचार भी किया गया है। इस प्रकार से पञ्चकोश का विचार किया जाता है।

जीव का वास्तविक रूप ब्रह्म ही होता है। सत्य ज्ञान के पश्चात् अद्वितीय वस्तु को अपने शरीर में हृदयरूपी गुहा के अन्दर जानना होता है। जिससे उसकी वहीं पर उपलब्धि होती है, वहाँ पर गीता का यह वचन हैं कि

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥ (भ.गी. 18.61)

यहाँ पर कही गयी हृदय रूपी गुहा के चारों ओर पञ्चकोश होते हैं। वे हैं अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, मनोमयकोश, विज्ञानमयकोश तथा आनन्दमय कोश इस प्रकार से होते हैं। उसके पञ्चदशी में इस प्रकार से कहा गया है।

अन्नं प्राणो मनो बुद्धिरानन्दश्चेति पञ्च ते।
कोशास्तैरावृतः स्वात्मा विस्मृत्या संसृतिं व्रजेत्॥ प.द. 1.33

अन्न, प्राण,मन बुद्धि तथा आनन्द इस प्रकार से पाँच कोश होते हैं। बुद्धि यहाँ पर विज्ञान होती है। इन पाँचों कोशों के द्वारा आत्मा ढकी हुई रहती है। आवरण यहाँ पर ढकी हुई के समान ही समझना चाहिए। क्योंकि वस्तुतः आत्मा का आवरण नहीं होता है। इस प्रकार से आत्मा के आवरण के कारण से अपने स्वरूप को नहीं समझकर तथा उसे भूलकर जीव संसारी हो जाता है। पञ्चकोश के विषय में तैत्तिरीय श्रुति में यह प्रमाण है

तस्माद्वा एतत्स्मादन्नरसमयादन्योन्तर आत्मा प्राणमयः।
तस्माद्वा एतस्मात्प्राणमयादन्योन्तर आत्मा मनोमयः।
तस्माद्वा एतत्स्मान्मनोमयादन्योन्तर आत्मा विज्ञानमयः।
तस्माद्वा एतत्स्माद्विज्ञानमयादन्योन्तर आत्मा आनन्दमयः॥ इति। (तै.उ.2.1-4)

विश्व का व्यष्टि स्थूल शरीर ही अन्नमय कोश होता है। पाँच प्राण तथा पाँच कर्मेन्द्रियों के साथ प्राणमय कोश होता है। मन तो ज्ञानेन्द्रियों के साथ मनोमय कोश रूप में होता है। बुद्धि ज्ञानेन्द्रियों के साथ विज्ञानमय कोश कहलाती है। तथा अविद्या परिणाम रूप वृत्ति आनन्दमय कोश कहलाती है। कोश के समान आच्छादकत्व होने से इसका कोश नाम दिया गया है। जैसे संसार में खड्ग का कोश होता है जो खड्ग को आच्छादित किये हुए रहता है। उसी प्रकार अन्नमयादि कोश भी आत्मा को आच्छादित किये हुए रहते हैं।

ध्यान दें:

जब अन्नमयकोश अभिमत वाला जीव होता है तब वह अन्नमयात्मा होता है। तब प्राणमय अभिमान वाला होता है तब उसकी प्राणमय आत्मा होती है। इसी प्रकार उस उस कोष में कल्पित अभिमान जीव की मनोमयात्मा, विज्ञानमयात्मा तथा आनन्दमयात्मा होती है।

18.2.1) अन्नमयकोश

शरीर तीन प्रकार के होते हैं कारण शरीर, सूक्ष्म शरीर तथा स्थूल शरीर। इनमें स्थूल शरीर अन्नमयकोश कहलाता है। पञ्चीकृत भूतों से उत्पन्न स्थूल देह ही अन्नमयकोश होता है। पञ्चीकृतस्थूलों से बना हुआ देह अन्न संज्ञक होता है। इस प्रकार से पञ्चदशीकार ने कहा है। शरीर भी अन्न का ही विकार होता है। अन्नविकारत्व से ही यह अन्नमय कहलाता है। स्थूलभोग को आयतन होने से यह स्थूल शरीर भी कहलाता है। माता पिता के द्वारा भुक्ति अन्न से भी इसकी उत्पत्ति होती है। तथा अपने द्वारा खाये हुए अन्न से यह स्थित रहता है। इसलिए इस शरीर का नाम अन्नमय शरीर किया गया है।

अन्नमयकोश में तन्मय होकर के जीव संसरण करता है। मैं स्थलू हूँ, मैं कृश हूँ, मैं सुन्दर हूँ इस प्रकार का भ्रान्तिग्रस्त यह जीव हो जाता है। अहं शब्द का यहाँ पर आत्मा अर्थ होता है। मैं स्थूल हूँ इस प्रकार से यहाँ पर जीव आत्मा को स्थूल समझता है। अथवा शरीरस्थ सौन्दर्यादि धर्म आत्मा के हैं इस प्रकार से चिन्तन करता है। वस्तुत: स्थूलत्वादि धर्म देह के होते है न की आत्मा के। वह जीव शरीर के क्लेशों को आत्मा मानकर के दु:खों का अनुभव करता है।

18.2.2) प्राणमय कोश

अब प्राणमय कोश का निरूपण किया जा रहा है। सप्तदश अवयव (17) तथा सूक्ष्म शरीर का पूर्व में विचार किया जा चुका है। वहाँ पर पाँच प्राण कर्मेन्द्रियों के साथ मिलकर के प्राणमय कोश का निर्माण करतें है। वृत्तिभेद से पाँच प्राण होते हैं। प्राण, अपान, समान, व्यान तथा उदान। इस प्रकार से पाँच कर्मेन्द्रियाँ होती है- वाक्, पाणि, पाद, पायु तथा उपस्थ। इस प्रकार से इन दशों का समूह प्राणमय कोश होता है। अन्नमय कोश अन्यन्त स्थूल होता है, प्राणमय कोश उतना स्थूल नहीं होता है। तथा अत्यन्त सूक्ष्म होता है ऐसा भी नहीं कह सकते हैं लेकिन अन्नमय कोश की अपेक्षा कुछ सूक्ष्म तो होता ही हैं।

18.2.3) मनोमय कोश

अब मनोमय कोश का निरूपण किया जा रहा है। यह तीसरा कोश है। मन ज्ञानेन्द्रियों से मिलकर के मनोमय कोश का निर्माण करता है। अर्थात् यह भी कह सकते हैं की पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ मन के साथ मिलकर के षष्टम अंश के रूप में मनोमय कोश का निर्माण करती हैं। इस प्रकार से श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा घ्राण तथा मन मनोमय कोश के अन्तर्गत होते हैं। फिर श्रोत्रमय कोश, चक्षुमय कोश, इसका नाम नहीं होता है। वहाँ पर यह कारण है कि सभी इन्द्रियों का अध्यक्ष मन होता है। मन के अधीन ही इन्द्रियों की प्रवृत्ति होती है। श्रोत्रेन्द्रिय स्वतन्त्रता से शब्द का ग्रहण नहीं कर सकती हैं। वहाँ पर उसे मन की सहायता की अपेक्षा होती है। उसी प्रकार चक्षु मन के विना रूप का ग्रहण नहीं करता है। इस प्रकार से सभी जगहों पर मन की अधीनता के द्वारा ही इन्द्रियाँ विषयों का ग्रहण करती है। इस प्रकार से इन्द्रियों की अपेक्षा मन के प्रधान होने से इस कोश का नाम मनोमय कोश है। इन्द्रियों के अभाव में भी स्वप्न में मन की प्रवृत्ति होती है। सङ्कल्प तथा विकल्प मन के ही विषय होते हैं। देहेन्द्रियों में तथा घर आदि में अहंता तथा ममता का उत्पादन मन ही करता है।

ध्यान दें:

शब्दार्थ व्यतिरिक्त प्रपञ्च नहीं होता है। इसलिए प्रपञ्च मन में ही होता है। बन्धन तथा मोक्ष मन के ही अधीन होते हैं। इस प्रकार से अन्नमय के तथा प्राणमय के ज्ञानशक्ति रहित होने से वह बलिष्ठ भी होता है।

मन के अतिरिक्त कोई अविद्या नहीं होती है। मन ही अविद्या का कार्य होता है। इसलिए संसारबन्धन का हेतु मन ही होता है। इस प्रकार से मन को ही बन्धन का कारण बताया गया है। मन के होने से ही देहादि में अभिमानरूप बन्ध होता है। अगर मन नहीं है तो देहादि में अभिमान रूप बन्ध भी नहीं है। इस प्रकार से मन ही बन्धकारणत्व रूप में सिद्ध होता है। मन के विनष्ट हो जाने पर सबकुछ विनष्ट हो जाता है। इसलिए सुषुप्ति में जगत की प्रतीति नहीं होती है।

स्वप्नेऽर्थशून्ये सृजति स्वशक्त्या।
भोक्त्रादि विश्वं मन एव सर्वम्॥ वि.चू. 172

सुषुप्तिकाल में मन का लय हो जाता है इस प्रकार से कहा जा चुका है। इसलिए उस समय जगत का भान भी नहीं रहता है। सुषुप्ति से उत्थि की स्मृति भी उस समय कुछ नहीं जानती है। इसलिए यह संसार मनकल्पित ही होता है। मन कल्पित संसार की वास्तविकता नहीं होती है स्वप्न के समान ही।

सुषुप्तिकाले मनसि प्रलीने।
नैवास्ति किञ्चित्सकलप्रसिद्धेः॥ वि.चू.173

मनसः बन्धमोक्षकारणत्वम्

मन ही मनुष्यों के बन्धन तथा मोक्ष का कारण होता है। जिस प्रकार से वायु के द्वारा मेघ लाये जाते है तथा उसी के द्वारा उनका लय हो जाता है। उसी प्रकार मन से बन्धन बनाये जाते हैं तथा फिर मन के द्वारा ही उनका निरास कर दिया जाता है। जिस प्रकार से मन के द्वारा बन्धनों की कल्पना की जाती है उसी प्रकार मन के द्वारा ही मोक्ष की भी कल्पना की जाती है। उदाहरण के द्वारा स्पष्ट होता है। जैसे पशु रज्जु से बद्ध होता है। इसलिए पशु के बन्धन तथा मुक्ति का हेतु वह रज्जु होती है। जिस रस्सी के द्वारा पशु का बन्धन होता है उसके द्वारा ही उसकी मुक्ति भी होती है। रस्सी के खोलने पर पशु भी मुक्त हो जाता है। इसी प्रकार यह मन भी पुरुष में दृढ़ता को जन्म देकर के पुरुष को बाँध लेता है। अर्थात् पुरुष उस समय रागपाश के द्वारा बन्ध जाता है। इस रागपाश का यहाँ स्वभाव है की यह देहादि विषयों में राग को उत्पन्न करता है। इसलिए राग ही पाश है इस प्रकार से राग पाश को जानना चाहिए। इस प्रकार से जो पुरुष राग पाश के द्वारा बन्ध जाता है वह विषयों के अधीन होकर ही जीवन जीता है। जैसे रागपाश के बन्धन कारण मन होता है वैसे ही रागपाश के मोचन के लिए भी मन का ही कारण्य अपेक्षित होता है। उसके लिए विषयों से मन की विरक्ति अपेक्षित होती है। विरक्ति नित्य तथा अनित्य वस्तुओं के विवेक के ज्ञान से होती है। विवेक मन के द्वारा उत्पन्न होता है। तात्पर्य यह है कि मन के राज जनन से बन्धन का कारण होता है तथा वैराग्य जनन से मोक्ष कारण होता है। इस प्रकार का यह तात्पर्य है। इस प्रकार से बन्धन का कारण तथा मोक्ष कारण मन ही है यह सिद्ध हो चुका है।

तस्मान्मनः कारणमस्य जन्तोर्।
बन्धस्य मोक्षस्य च वा विधाने॥ वि.चू.176

मन किस प्रकार से बन्धन तथा मोक्ष का कारण होता है। तो कहते हैं की अशुद्ध मन बन्ध का कारण होता है। तथा शुद्धमन मोक्ष का कारण होता है। मलिन मन ही अशुद्ध के रूप में कहा जाता है। गुण तीन प्रकार के होते है। सत्त्वगुण, रजोगुण तथा तमोगुण। वहाँ पर रजोगुण तथा तमोगुण के साथ जब मन होता है तब वह मन अशुद्ध होता है। तथा रजोगुण और तमोगुण से रहित मन जब मात्र सत्त्वगुण से युक्त होता है तब वह शुद्ध होता है। इस प्रकार से मन का एकत्व भी गुण भेद के कारण बन्ध तथा मोक्ष

ध्यान दें:

का कारण हो जाता है।

मन का शुद्धि सम्पादन

शुद्ध मन मोक्ष का हेतु होता है, इस प्रकार से कहा जा चुका है। अब मन की शुद्धि किस प्रकार से होती है इस पर विचार किया जा रहा है। विवेक तथा वैराग्य के द्वारा मन शुद्ध होता है।विवेक यह आत्मा है तथा यह आत्मा नहीं है इस प्रकार के विवेचन का ज्ञान होता है। अर्थात् आत्मा तथा अनात्मा का ज्ञान ही विवेक कहलाता है। अज्ञानादि सकल जड़ समूह अनात्मा होते हैं। आत्मा सच्चिदानन्दस्वरूप होती है। सुख की प्राप्ति आत्मा में ही होती है। आत्मभिन्न वस्तुओं में सुख होता ही नहीं है केवल दु:ख ही होता है। इस प्रकार से शास्त्राचार्यों के उपेदश के कारण जिसकी इस प्रकार से जब बुद्धि उत्पन्न होती है तब दु:खजनक अनात्माओं में उसे विरक्ति हो जाती है। विरक्त होने पर फिर देहादि विषयों मे राग उत्पन्न नहीं होता है। यही वैराग्य कहलाता है। इस प्रकार से विवेक तथा वैराग्य के द्वारा मन अन्तर्मुखी हो जाता है। उससे मन की शान्ति प्राप्त होती है। इस प्रकार से मन की शुद्धि को सम्पादित करके वह प्रसन्न चित्त होकर के संसार से मुक्त हो जाता है।

विवेकवैराग्यगुणातिरेका-
च्छुद्धत्वमासाद्य मनो विमुक्त्यै॥
भवत्यतो बुद्धिमतो मुमुक्षो-
स्ताभ्यां दृढाभ्यां भवतिव्यमग्रे॥ वि.चू. 177

यदि विषयों को अरण्य के रूप मे स्वीकार करें तो मन वहाँ पर बाधित होता है। व्याघ्र के मरण के भय से लोग जिस प्रकार से अरण्य में प्रवेश नहीं करते हैं उसी प्रकार साधु जन भी मोक्ष की इच्छा करते हुए मनोरूपी व्याघ्र के भय से विषय रूपी अरण्य में प्रवेश नहीं करते हैं विषयों के प्रति जाना मन का स्वभाव होता है।

18.2.4) विज्ञानमय कोश

यह चौथा कोश होता है। बुद्धि तथा ज्ञानेन्द्रियों के सहित यह विज्ञानमय कोश होता है। जिसे विवेकचूडामणी में इस प्रकार से कहा गया है।

बुद्धिर्बुद्धीन्द्रियै: सार्धं सवृत्ति: कर्तृलक्षण:
विज्ञानमयकोश: स्यात्पुंस: संसारकारणम्॥ 186

इस कोश में बुद्धि प्रधान होती है। बुद्धि निश्चयात्मिका अन्त: करण की प्रवृत्ति होती है। इस प्रकार से बुद्धि का विषय निश्चय होता है। इस प्रकार से यह कोश कर्तृलक्षण कोश होता है। मैं कर्ता हूँ इस प्रकार के कर्तृत्व के अभिमान से बुद्धि के कार्य होते हैं । कर्तृत्व ज्ञानेच्छा ही कर्तृत्व होती है। जिस प्रकार से घट के निर्माण के लिए कुलाल की इच्छा होती है। केवल इच्छा से घट का निर्माण नहीं होता है। वहाँ पर ज्ञान भी अपेक्षित होता है। घट के निर्माण के लिए जो जो अपेक्षित है उन सबके द्वारा किस प्रकार से बनाया जाए यह भी जानना चाहिए। मिट्टी वहाँ पर उपादान कारण होती है। चक्र के भ्रमण के द्वारा घट का निर्माण करना चाहिए। उसका आकार पृथुबुध्नोदर विशिष्ट होना चाहिए। इस प्रकार से ज्ञान की स्थिति होती है।तथा कृति प्रयत्न होता है।

इस प्रकार से अन्त: करण मन तथा बुद्धि होती है। मन करणत्व कारक है तथा बुद्धि कर्तृत्व कारक है। विचारान्तर ही पुरुष की प्रवृत्ति होती है। इस प्रकार से पूर्वापरीभाववत्वसे मन तथा बुद्धि का वाह्यान्तरभाव इस मनोमय के अन्तर ही विज्ञानमय कोश होता है यह भाव है। इसलिए मनोमय से अन्यतर

ध्यान दें:

आत्मा विज्ञानमय होती है ऐसा तैत्तिरीय श्रुति में कहा गया है। परमात्म चैतन्य बुद्धि में प्रतिबिम्ब के रूप मे रहता है। तब वह प्रतिबिम्ब जीव कहलाता है। इस प्रकार से बुद्धि परमात्मा के दर्पण के समान ही होती है। जब दर्पण होता है तब ही प्रतीबिम्ब होता है। दर्पण के अभाव में तो प्रतिबिम्ब भी नहीं होता है। सुषुप्ति काल में बुद्धि नहीं होती है। इसलिए बुद्धि रूपी दर्पण के अभाव में जीव भी नहीं होता है। उसका परमात्मा मे लय हो जाता है। इसलिए विवेक चूडामणि में यह कहा गया है कि बुद्धि जीव के पीछे-पीछे चलती है। विशेष ज्ञान के प्रति कारण होता है इस प्रकार से बुद्धि का विज्ञानमयत्व सिद्ध होता है, परमार्थ जो ज्ञान होता है उससे अन्य यह विज्ञान होता है। मूलप्रकृति से अविद्या के परिणाम रूप में यह होती है। अविद्या त्रिगुणात्मिक होती है। लेकिन अविद्यागत सत्त्वगुण का परिणाम बुद्धि नहीं होती है। इसलिए यह निर्मल होती है। इस प्रकार इसके निर्मलत्व होने के कारण ही दर्पण के समान परमात्मा का प्रतिबिम्ब इसमें दिखाई देता है। स्वच्छ पदार्थ में प्रतिबिम्ब निश्चित रूप से रहता है। इस प्रकार से चित्प्रतिबिम्बभूत जीव के द्वारा ही कुछ समझा जा सकता है। मैं स्थूल हूँ, कृश हूँ इत्यादि उसके तादात्म्य अभिमान के कारण होता है यह जानना चाहिए।

बुद्धि क्रियात्व का उपपादन करती है। तथा अविद्या का विकार भी होती है इस प्रकार से कहा भी जा चुका है। तो अविद्या के समान बुद्धि का अनादित्व होता है क्या यह संशय उत्पन्न होता है। तो इसका एक समाधान है। बुद्धि पूर्वकृत कर्मवासनाओं का आश्रय होती है। उस प्रकार की बुद्धि के नाश होने पर तो कर्मानुगुण सृष्टि सम्भव ही नहीं होती है। अविदेह कैवल्य संसारकारणभूता बुद्धि का अनादित्व अवश्य कहना चाहिए। विज्ञानमय कोश सभी व्यवहारो में अर्थात् लौकिक तथा वैदिक व्यवहारों मे कर्ता के रूप में होता है। इसकी जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्ति आदि अवस्थाएँ होती हैं। अपने कर्मानुसार यह संसरण करता है।

विज्ञानमय आत्मा के अत्यन्त समीप होता है। इसलिए यह अत्यन्त प्रकाशमान होता है। स्वयं जड होते हुए भी आत्म प्रतिबिम्ब के सम्भव होने से यह चेतन के समान प्रतीत होता है। देहादि के आश्रमधर्म तथा तदनुगण कर्म भी होते हैं। लेकिन विज्ञानमय उन सभी को अहंता ममता की चिन्ता के द्वारा स्वयं में चिन्तन करता है। वहाँ पर वह कर्ता तथा भोक्ता होता है। इसी प्रकार से इस संसार के दुःख भी होते है। लौहित्य स्फटिक का धर्म नहीं होता है फिर भी लोहित स्फटिक इस प्रकार का व्यवहार होता है। वहाँ पर यह कारण है कि स्फटिक समीप लोहित पुष्प का होना। इस प्रकार से पुष्प में रक्तिमा भी होती है। रक्तिमा पुष्प का धर्म होता है। फिर भी सामीप्य से पुष्प की रक्तिमा स्फटिक में प्रतिबिम्बित होती है। लोग स्फटिक में प्रतीयमान रक्तिमा को पुष्प की रक्तिमा इस प्रकार से नहीं जानकर के अविवेक से लोहित स्फटिक इस प्रकार से ही कहते है। उसी प्रकार से में कर्ता हूँ, मैं भोक्ता हूँ, इस प्रकार का सभी का व्यवहार होता है। अथवा मैं सन्यासी हूँ, मैं ब्रह्मचारी हूँ, इस प्रकार का होता है। यहाँ पर अहं पद से आत्मा विवक्षित होती है। इस प्रकार से कर्तृत्व तथा भोक्तृत्वादि धर्म आत्मा के होते हैं इस प्रकार से अविवेकी लोग चिन्तन करते हैं। वहाँ पर केवल उपाधि सामीप्य कारण होता है। जैसे पुष्पसामीप्य स्फटिक का कारण होता है। प्रकृत आत्मा की उपाधि बुद्धि होती है। इस प्रकार से बुद्धि के सामीप्य से बुद्धिगत कर्तृत्व भोक्तृत्वादि धर्मों को आत्मा में आरोपित करके मैं कर्ता हूँ मैं भोक्ता हूँ इस प्रकार से तादात्म्य अभिमान के कारण मनुष्य चिन्तन करता हैं। पुष्प को हटाने से स्फटिक का लोहित्य भी हट जाता है। उसी प्रकार बुद्धि रूपी उपाधि के नाश होने पर उसमें होने वाले कर्तृत्वादि धर्म भी बाधित हो जाते हैं। इसलिए इसे विवेकचूडामणी में इस प्रकार से कहा गया है।

कूटस्थः सन्नात्मा कर्ता भोक्ता भवत्युपाधिस्थः इति। (191)

उपाधिसम्बन्धवशात् परात्माप्युपाधिधर्मानुभाति तद्गुणः। (193)

परमात्मा का जीव भाव उपाधि के द्वारा कहा गया है। उपाधि तथा विज्ञानमय कोश अनादि होते

ध्यान दें:

हैं। अनादि का नाश नहीं होता है। तो आत्मा के जीव भाव का नाश नष्ट नहीं होता है। उसके द्वारा तो जीव का मोक्ष भी नहीं होता है यह सन्देह होता। यहाँ पर कहते हैं की यह भ्रान्ति के कारण कल्पित है। इसलिए ये वास्तविक नहीं है। भ्रान्ति के बिना असंख्य निष्क्रिय निराकार आत्मा का विषयों के साथ संबंध नहीं होता है। इस प्रकार से बुद्धि के तादात्म्य से, भ्रान्ति से प्राप्त आत्मा का जीवाभाव होता है। इसलिए भ्रान्ति का बाध करने पर जीवत्व का भी बाध होता है। जितने काल तक भ्रान्ति रुकती है उतने काल तक ही जीवभाव की भी सत्ता होती है। जैसे भ्रान्तिकाल में ही रज्जु में प्रतीत सर्प की सत्ता होती है। भ्रान्ति के नाश होने पर रज्जु में कल्पित सर्पत्व का भी नाश हो जाता है। अविद्याकार्य का अनादित्व होने पर भी विद्या का उदय होने पर सूर्योदय के समय अन्धकार के नष्ट होने के समान अविद्या भी अस्त हो जाती है। स्वप्न में जो-जो देखा जाता है प्रबोध होने पर उन सभी का मूल सहित नाश हो जाता है। इसी प्रकार आत्मा का बुद्धि से सम्बन्ध होता है। सम्यक् ज्ञान होने पर ही वह अविद्या नष्ट हो जाती है। सम्यक् ज्ञान से तात्पर्य है ब्रह्म के साथ एकत्व का ज्ञान। मैं स्वयं आत्मा हूँ। इस प्रकार का ज्ञान होता है। वह ज्ञान किस प्रकार से उत्पन्न होता है। इस प्रकार से आत्मा तथा अनात्मा के विवेकियों के द्वारा जानना जाहिए।

कीचड़ से संयुक्त जल जिस प्रकार से स्पष्ट रूप में प्रकाशित नहीं होता है। उसी प्रकार आत्मा भी उपाधियुक्त होता हुआ स्पष्ट रूप में प्रकाशित नहीं होता है। कीचड़ के निकल जाने पर जल स्वयं ही शुद्ध होता है उसी प्रकार उपाध्याय उपनयन होने पर आत्मा शुद्धता के द्वारा अभिव्यञ्जित होती है।

18.2.5) आनन्दमय कोश

कारण शरीर का भान सुषुप्ति अवस्था में होता है इस प्रकार से कहा भी जा चुका है। कारण शरीर अविद्यात्मक होता है। अविद्या में तीन गुण होते हैं। सत्त्वगुण, रजोगुण तथा तमोगुण। अविद्या सत्वगुण, रजोगुण तथा तमोगुण के द्वारा युक्त होती है। इसलिए वहाँ सत्त्वगुण की अविशुद्धता होती है। अर्थात् सत्त्वगुण की शुद्धि विनष्ट होती है। इस प्रकार से मलिन सत्त्व, आनन्दमय कोश होता है। उसकी फिर तीन प्रकार की वृत्तियाँ होती हैं। प्रिय, मोद तथा प्रमोद।

इष्ट वस्तु का दर्शन जन्य सुख प्रिय होता है। उसका लाभ होने पर मोद होता है। तथा उसके भोग होने पर प्रमोद होता है। अभीष्ट वस्तु के दर्शन में जो वृत्ति उत्पन्न होती है वह प्रिय रूप में व्यवरणीय होती है। इष्ट वस्तु के दर्शन के बाद जब उसकी प्राप्ति होती है तब वह उत्पन्न होने पर वृत्ति मोद कहलाती है। वस्तु का दर्शन हो गया वह मिल भी गयी तथा जब उसका उपभोग किया तो उससे उत्पन्न होने वाली वृत्ति प्रमोद कहलाती है। इस प्रकार से तीन प्रकार की वृत्तियों के द्वारा यह आनन्दमय कोश प्रसिद्ध है।

सुषुप्ति मे आनन्दमय कोश का अच्छी प्रकार से स्फुरण होता है। आनन्द का अनुभव अच्छी तरह से होता है, यह ही उसका अभिप्राय है। वह अज्ञान से आवृत्त है इस कारण से सुषुप्ति कालीन आनन्द मुख्य नहीं होता है। स्वप्न तथा जागरण में आनन्द का अल्प ही स्फुरण होता है। इस प्रकार से उस आनन्द का प्रिय मोद तथा प्रमोद के रूप में अनुभव होता है।

पाठगत प्रश्न 18.2

1. क्लेश कितने होते हैं?
2. पञ्चकोश कौन-कौन से होते हैं?

ध्यान दें:

3. प्रथम कोश कौन-सा होता हैं?
4. ईश्वर सभी भूतों में कहाँ पर रुकता है?
5. पाँच कोशों के द्वारा कौन आवृत्त होता है?
6. अन्न रसमय आदि से अन्यतर आत्मा कौन-सी होती है?
7. अन्नमय कोश क्या है?
8. प्राणमय कोश क्या है?
9. मनोमय कोश क्या है?
10. विज्ञानमय कोश क्या है?
11. आनन्दमय कोश क्या है?
12. कोश इस प्रकार के नाम का क्या अभिप्राय है?
13. अन्नमय कोश में तन्मय होकर कौन संसरण करता है?
14. वृत्तिभेद से प्राण कितने प्रकार के होते हैं?
15. मनोमय कोश में कितने अंश होते हैं?
16. गेहादि में अहंता तथा ममता को उत्पादन कौन करता है?
17. मन किसका कार्य होता है?
18. मन से कल्पित क्या होता है?
19. मन मनुष्य के किस किस का कारण है?
20. वैराग्य जनन के द्वारा मोक्ष का क्या कारण होता है?
21. राग जनन के द्वारा बन्धन का क्या कारण है?
22. विवेक तथा वैराग्य के द्वारा क्या शुद्ध होता है?
23. निश्चयात्मिका अन्त:करणवृत्ति कौन-सी है?
24. कर्तृलक्षण कोश कौन-सा है?
25. अविद्यागत सत्वगुण का क्या परिणाम होता है?
26. परमात्मा का जीवभाव किसके द्वारा होता है?
27. अविद्या के कितने गुण होते हैं?
28. तीन गुण कौन-कौन से हैं?
29. आनन्दमय कोश की तीन वृत्तियाँ कौन-कौन सी हैं?
30. इष्टवस्तु का दर्शनजन्य सुख क्य होता है?
31. मोद कब होता है?
32. आनन्दमय कोश का सम्यक् स्फुरण कब होता है?

ध्यान दें:

18.3) अनात्मों में आत्मा के समान बुद्धि

अन्नमयादि कोश होते हैं। उनका जीव बोधकत्व किस प्रकार से होता है इस प्रकार की शङ्का होती है। इसमें तादात्म्य का कोई दोष नहीं है। अन्नमयादि कोशपरत्व होने पर भी उनके द्वारा तादात्म्य अध्यास से वह तत् तन्मय हो जाता है। कोशों में अभिमान से स्वयं जीव उस उस कोश को मानता है। इस प्रकार से अन्नमयकोश में अभिमान से स्वयं को जीव स्थूलशरीर भी मानने लगता है। व्यवहार काल में अन्नमयादि कोशों का प्राधान्य होता है। इसलिए अन्नमयादि जीव के शब्द वाच्यत्व होते हैं। तत्तन्मयत्व से ही जीव का बन्ध होता है, इसको पञ्चदशी में इस प्रकार से कहा गया है।

तत्तत्कोशैस्तु तादात्म्यादात्मा तत्तन्मयो भवेत्। प.द. 1.36

जीव अपने स्वरूप परमात्मा को भूलकर के देहादियों में आत्मवत् बुद्धि कल्पना करता हैं। भले ही जीव स्थूल देहादि से अथवा पञ्चकोशों से अत्यन्त ही भिन्न होता है। फिर भी वे अपने स्वरूप का चिन्तन करते हैं। जैस लोक में दश लोग नदी को तैरकर पार करके ग्रामान्तर को प्राप्त करके हमलोग दस लोग हैं अथवा नहीं इस प्रकार से स्वयं को छोडकर गणना करते है और उस दसवें को ढूँढ़ते हैं। उसी प्रकार जीव भी वास्तविक आत्मा को परित्याग करके आत्मभिन्न अनात्मकोषों में आत्मा को ढूँढता है। अविद्या के द्वार पञ्चकोशो से में अभिन्न हूँ इस प्रकार से मानता है। अन्नमयादि अनात्मों से मैं अन्य नहीं हूँ इस प्रकार का अभिमान करता है। इस प्रकार से स्वयं ब्रह्म होते हुए भी उसके द्वारा ब्रह्म अप्राप्त होता है। इस प्रकार से अविद्या के द्वार अप्राप्त जो ब्रह्म स्वरूप है उसकी प्राप्ति विद्या के द्वारा होती है। और विद्या आचार्यों के उपदेश से प्राप्त होती है।

18.4) पञ्चकोश विवेक

अध्यारोपवाद तथा अपवाद के द्वार पञ्चकोश प्रपञ्चित होता है इसे पूर्व में कहा जा चुका है। इन पञ्चकोशों के प्रतिपादन के द्वारा ही आत्मा में अनात्मभूत अन्नमयादि कोशों का अध्यारोप हुआ। अब अपवाद को आरम्भ करते हैं। अपवाद निरास कहलाता है। आत्मा में कल्पित अतद्धर्मों का निरास होता है। तथा उससे आत्मस्वरूप का भान होता है।

सभी जगह सभी में आत्म होती है। लेकिन सुलभता से उसकी प्राप्ति किसी को भी नहीं होती है। वहाँ पर कारण है आत्मा का गूढ रूप होना। गूढत्व से तात्पर्य है आच्छादत्व होना। पञ्चकोशों के द्वारा आत्मा आवृत होता है इस प्रकार का वहाँ पर आशय है। ब्रह्म गुहातीत होता है। तथा गुहा पञ्चकोशों के द्वारा निर्मित होती है। उसे आवृत्त होकर के निर्गुण ब्रह्म होता है। सबसे पहले अन्नमयकोश होता है उसके बाद प्राणमयकोश होता है उसके बाद मनोमय कोश होता है उसके बाद विज्ञानमय कोश होता है तथा उसके बाद आनन्दमयकोश होता है। इस प्रकार से आनन्दमय कोश के भी अन्दर होता है वह आत्मा होता है। इस प्रकार से उसे गुहातीत जानना चाहिए। गुहातीत का ज्ञान पञ्चकोशों के विवेक के ज्ञान के द्वारा होता है। इस प्रकार से यह आत्मा अन्नमयकोश नहीं होती है न ही प्राणमय कोश, न मनोमय कोश, विज्ञानमय कोश और न ही यह आनन्दमय कोश होती है। इस प्रकार से आत्मा तथा अनात्मा का विवेक करना चाहिए। इस प्रकार से पञ्चकोशों का भी अपवाद करके हेय तथा उपादेय रहित जो जाना जाता है वह ब्रह्म कहलाता है।

18.4.1) अन्नमय का आत्मत्व निराश

स्थूल देह अन्नमय कोश होता है। देह की वृद्धि तथा क्षय अन्न के विकारत्व के कारण ही होती

ध्यान दें:

है। पर वे दोनों आत्मा के नहीं होते है। इसलिए देह आत्मा नहीं है। देह जन्म से पहले नहीं होती है तथा मरण से बाद नहीं होती है। लेकिन आत्मा तो हमेशा होती है। अन्न के विकारत्व से अन्न का कार्य अन्नमय कोश में होता है। आत्म का तो कार्य तथा कारण दोनों ही नहीं होते हैं। इस प्रकार से क्षणिकत्वादि धर्म विशिष्ट अन्नमयकोश नित्यत्वादि धर्म लक्षित लक्षण आत्मा का नहीं होता है। जिसे पञ्चदशी में इस प्रकार से कहा है।

पितृभुक्तान्नजाद्वीर्याज्जातोन्नेनैव वर्धते।
देहः सोऽन्नमयो नात्मा प्राक् चोर्ध्वं तदभावतः॥ प.द. 3.3

शरीर के गुण क्षण क्षण में बदलते रहते हैं इसका कोई नियत एक निश्चित स्वभाव नहीं होता है। यह एक रूप के द्वारा व्यवस्थित नहीं होता है। एक ही जन्म में बाल्यकौमरादि अवस्थाओं में भी शरीर भिन्न भिन्न रूप में जाना जाता है। शरीर भिन्न होता है। उसकी अपेक्षा कुमार का शरीर भिन्न होता है। वृद्धावस्था में बाल्य तथा कौमार आदि अवस्थाओं से अत्यन्त ही भिन्न होता है। यौवन काल में शरीर सुन्दर तथा सुदृढ होता है। लेकिन वृद्धावस्था में शरीर सुन्दर नहीं होता है। और यौवन काल में जितना बल होता है उतना बल भी वृद्धावस्था में नहीं होता है। तब शरीर अत्यन्त दुर्बल होता है। इन अवस्थाओं में शरीर की वृद्धि भी होती है तथा क्षय भी होता है। इस प्रकार से आत्मा में नहीं होता है। आत्मा के अवयव नहीं होते है। इसलिए उसके गुण तथा दोष भी नहीं होते हैं। इसलिए ही उसके शरीर के समान वृद्धि तथा क्षय भी नहीं होते हैं। शरीर जड होता है तथा आत्मा तो चेतन होता है।

घटादियों का आँखों के द्वारा दर्शन त्वचा से स्पर्श होता है। इसी प्रकार से शरीर का भी दर्शन तथा स्पर्श होता है। आत्मा को आँखों के द्वारा उसके रूप के अभाव के कारण देखा नहीं जा सकता। क्योंकि चक्षु का विषय रूप होता है तथा त्वक् इन्द्रिय का विषय स्पर्श होता है। उसके अभाव से आत्मा को स्पर्श नहीं कर सकते हैं। इस प्रकार से गन्धादि के अभाव के समान आत्मा में इन्द्रियों का प्रवेश नहीं होता है।

पादहस्तादि स्थूल शरीर के अवयव होते हैं। पाद आत्मा नहीं होती है क्योंकि पाद के अभाव में कोई जीवित रहता है। इसी प्रकार से हस्त के अभाव में भी कोई जीवित रहता है। इस प्रकार विकलाङ्ग जीते जो हमारे प्रत्यक्ष में है। इसलिए अवयवों में आत्मबुद्ध भ्रान्ति मात्र है। इनके द्वारा अपने कर्मो को करने में तथा शक्ति प्रदान करने में मूल तत्व आत्मा ही होती है। चेतनत्व होने से आत्मा शरीर तथा इन्द्रियों की नियामक होती है। शरीर नियम्य होने के कारण जड़ होता है। इस प्रकार से नियम्य तथा नियामक में भेद नहीं होता है। आत्मा पैर नहीं होती है अपित गमनार्थ शक्ति प्रदायिका होती है इसी प्रकार से आत्मा पाद की पाद तथा हाथ की हाथ होती है।

पाणिपादादिमान् देहो नात्मा व्यङ्ग्येपि जीवनात्।
तत्तच्छक्तेरनाशाच्च न नियम्यो नियामकः॥ वि.चू.158

देह धर्म देह के कर्म देह के सम्बन्ध और अवस्थाएँ इन सभी की साक्षी आत्मा होती है। जनन देह का धर्म होता है।मरण भी देह का धर्म होता है। बाल्ययौवनादि भी देह के धर्म होते हैं। गमनागमनादि भी देह के धर्म होते हैं। मैं स्थूल हूँ, मैं कृश हूँ इस प्रकार के व्यवहार देह के होते हैं। यहाँ अहं पद का अर्थ आत्म होता है। इस प्रकार से आत्मा स्थूल आत्मा कृश इस प्रकार की स्थिति उत्पन्न होती है। स्थूलत्वादि धर्म देह के ही होते हैं। वे अध्यासवश आत्मा में आरोपित होकर के व्यवहरित होते हैं। इन सभी का साक्षी आत्मा होता है। इसलिए इन सभी के साक्षित्व होने के कारण आत्मा देहादि से विलक्षण होती है।

देह आत्मा नहीं है यहाँ पर अन्य कारण है। देह अशुद्ध पदार्थ होता है। क्योंकि देह मांस में लिप्त

ध्यान दें:

तथा पुरीष से पूर्ण होता है। और स्वेददुर्गन्धादि से अत्यन्त ही अशुद्ध होता है। इन सबसे विलक्षण स्वयं में निर्मल आत्मा होती है। आत्मा कभी ही अशुद्ध होने योग्य नहीं है।

शल्यराशिर्मांसलिप्तो मलपूर्णोतिकश्मलः।
कथं भवेदयं वेत्ता स्वयमेतद्विलक्षणः॥ वि.चू.160

18.4.2) मूढ तथा अमूढ़ का वैलक्षण्य

मूढ कौन है? तथा अमूढ़ कौन है अथवा पण्डित कौन है इस प्रकार से विचार किया जाता है। त्वचा मांसादि सहित अशुद्ध शरीर को जो आत्मा मानता है वह मूढ होता है। अर्थात् जो शरीर मैं पन वाली तादात्म्य बुद्धि करता है वह मूढ़ होता है। यहाँ पर विचारशील पुरुष तो देहविलक्षण निर्मल परमार्थस्वरूप परमात्मा को ही अपने स्वरूप के रूप में जानता है। मैं देह ही हूँ, इस प्रकार से मूढ़ चिन्तन करता है। पण्डित तो देह रूप में जीव में ही आत्मबुद्धि की कल्पना करता है। देह अर्थात् देहस्थित जीव। इसको शास्त्रजन्य कुछ परोक्ष ज्ञान भी होता है। लोक व्यवहारों में देह में तथा वैदिक व्यवहारों में स्वर्गादि में जीवों में अहंत्व बुद्धि की कल्पना की जाती है। शरीरविशिष्ट जीव होता है। इस प्रकार से इनकी मति है। विना शरीर के जीव तथा आत्मा और शरीर की स्थिति नहीं होती है यह उनका वाद है। न केवल जो आत्मा तथा अनात्मा के विवेक को जानने वाला विद्वान् होता है वह शरीरादिवलक्षण परमार्थ आत्मस्वरूप को प्राप्त करता है।

यहाँ शङ्कराचार्य का यह उपदेश है कि स्थूल देह में इस प्रकार की आत्मबुद्धि का त्याग करके निर्विकल्प शुद्ध ब्रह्म में, मैं ब्रह्मा हूँ इस प्रकार की बुद्धि का सम्पादन करना चाहिए

आत्रात्मबुद्धिं त्यज मूढबुद्धे
त्वङ्मांसमेदोस्थिपुरीषराशौ।
सर्वात्मनि ब्रह्मणि निर्विकल्पे
कुरुष्व शान्तिं परमां भजस्व॥ व.चू. 163

18.4.3) प्राणमय कोश का आत्मत्वनिरास

देह में सर्वत्र व्याप्य वायु ही प्राणमय कोश है। वह जड होती है। आत्मा तो चेतन होता है इसलिए जडत्वधर्मविशिष्ट प्राणमयकोश आत्मा नहीं होती है। वायु का विकार होता है इसलिए वह प्राणमय है। वायु जैसे आती है वैसे ही जाती है। इस प्रकार से प्राण का आगमन उच्छ्वास तथा निर्गमन निच्छ्वास कहलाता है। यह क्रियावान् तथा परिच्छिन्न होता है। आत्मा निष्क्रिय तथा अपरिच्छिन्न होता है। यह प्राण अचेतन तथा परतन्त्र होता है। यह इष्ट अनिष्ट सुख तथा दुख को नहीं जानता है। प्राणमय काल मे यह निरुद्ध होता है। इसका निरुध्यमानत्व प्रसिद्ध है। प्राण सुषुप्ति में जागता है। यदि यह प्राण आत्मा होता तो सुषुप्ति काल में इसके जागने से चोरादि चोरी आदि कार्य नहीं कर सकते। चोरों के घर में प्रवेश करते ही वह प्राणात्मा जाना जाए। लेकिन इस प्रकार का अनुभव संसार मे नहीं है। इसलिए यह प्राण आत्मा नहीं होता है।

18.4.4) मनोमयकोश का आत्मत्व निरास

देहादियों में अभिमान का कारण जो होता है वह मन होता है। यह मन ही मनोमय कोश होता है। यह मैं हूँ यह मेरा है इस प्रकार का अभिमानी यह मनोमनय कोश होता है। मैं ब्राह्मण हूँ, मैं पण्डित हूँ, यह मेरा घर है, यह मेरा पुत्र है, इस प्रकार से यह अहंता तथा ममता करता है। वहाँ पर केवल अभिमान

ध्यान दें:

ही कारण होता है। इस प्रकार से कामक्रोधादि भी मन के ही विकार होते हैं। आत्मा तो निर्विकार तथा निराभिमानी होता है। इसलिए यह मनोमयकोश आत्मा नहीं होता है।

18.4.5) विज्ञानमयकोश का आत्मत्व निरास

सुषुप्ति में लय को प्राप्त करने वाले तथा जाग्रत में नखशिखापर्यन्त व्याप्य शरीर में जो बुद्धि है वह निश्चयात्मिका बुद्धि विज्ञानमय कोश कहलाती है। सुषुप्तिकाल में विज्ञानमय कोश का अस्त तथा फिर जाग्रत काल में उदय हो जाता है। विज्ञानमय कोश के उदय होने से तथा अस्त होने से यह आत्मा नहीं होता है। निश्चयात्मिका अन्त:करणवृत्ति ही बुद्धि होती है। संशयात्मिका अन्त: करणवृत्ति मन होता है। बुद्धि तथा मन दोनों ही अन्त: करण के ही अंश होते हैं। फिर किसलिए दो प्रकार कल्पित है इस प्रकार की आशङ्का नहीं करनी चाहिए। कर्तृत्व तथा करणत्व के भेद सद्भाव से यह दो प्रकार की होती है। मन करण होता है। बुद्धि कर्ता होती है। इस प्रकार से अन्तरिन्द्रिय अन्त: करण कर्तृरूप मे तथा करण रूप मे परिणित होता है। बुद्धि अन्दर होती है तथा मन उसकी अपेक्षा बाहर होता है यह भी भेद यहाँ पर वाच्य है। इसलिए दो कोशों का व्यवहार उत्पन्न होता है।

18.4.6) आनन्दमयकोश का आत्मत्व निरास

आनन्द आत्मा का स्वरूप होता है। उसी का ही भोग काल में कुछ अनुभव किया जाता है। पुण्य कर्मों के द्वारा फलों के अनुभव काल मे कुछ वृत्ति अन्तर्मुखी होने पर वह आनन्द को प्रतिबिम्ब कराने वाली होती है। वह ही फिर भोगान्तर निद्रारूप मे लीन हो जाती है। वह ही वृत्ति आनन्दमय कहलाती है। यह आनन्दमय कभी कौन होता है, कभी होता है तथा कभी नहीं होता है। कभी उसके अनित्यत्व का बोध होता है। नित्य तो हमेश एकरूप में ही रहता है। इसलिए अनित्यत्व से नित्य आत्मा होने योग्य नहीं है। बुद्धि आदि में जो आनन्द प्रतीत होता है अथव प्रतिबिम्ब के द्वारा अवस्थित होता है। उस आनन्दमय का कारणभूत जो आनन्द होता है वही आत्मा है। इसलिए सभी प्रकार के आनन्द का हेतु आत्मा ही है। यह ही आनन्द करवाता है इस प्रकार से श्रुतियों ने माना भी है। जो आनन्द प्रदान करता है वह प्रचुरानन्द होता है इस प्रकार से लोक में प्रसिद्ध भी है। जो अन्यों के लिए धन देता है वह अधिक धनवान होता उसीप्रकार। वहाँ पर दु:ख मन का होता है तथा धर्म तथा सुख आनन्दमय धर्म का होता है इस प्रकार से विवेचना करके जानना चाहिए

18.5) पञ्चकोशों से अतिरिक्त आत्मा

स्थूल शरीर से लेकर सुषुप्ति के आनन्द तक ज्ञान की कोई सीमा होती है। उसके बीच में कोई भी आत्मा विद्यमान नहीं होती है ऐसा कहा जा चुका है। तो फिर वह आत्मा क्या है यह चिन्तन का विषय है।

पञ्चकोश तथा उसके धर्म जाने जाते है। इसलिए वे ज्ञान के विषय होते है। जो ज्ञान के विषय होते हैं वह ज्ञान आत्मा कहलाता है। सबकुछ आत्मा के विषय होते हैं। इसलिए सभी आत्मा के द्वारा जाने जाते हैं। लेकिन आत्मा को कोई भी नहीं जानता है। न कोई उसका जानकार है। ये कहे गये पञ्च कोश के द्वार प्रकाशित होते हैं वह चैतन्य ही आत्मा कहलाता है।

परब्रह्म उपाधिवर्जित तथा शुद्ध होता है। जन्मवश रहित होता है। अज्ञान से अस्पृष्ट होता है। मायाकृत द्वैत से रहित होता है। उसका रूप नहीं होता है। गन्ध नहीं होती है। रस नहीं होता है। स्पर्श नहीं होता है। शब्द भी नहीं होता है। इसलिए उसका प्रत्यक्ष प्रमाण के द्वारा ग्रहण नहीं होता है। वह किसी

ध्यान दें:

भी प्रमाण का विषय नहीं होता है। तथा अप्रमेय होता है। इसका न आदि होता है न अन्त होता है। इसलिए यह आत्मा आदि तथा अन्त रहित होता है। आत्मा सर्वत्र सभी में होता है। इसलिए इसका त्याग नहीं किया जा सकता है। स्वयं का ही स्वरूप होता है इसलिए ब्रह्म हेयोपादेय रहित होता है। इसप्रकार की आत्मा के बोध के लिए पाँच कोश कल्पित किये गये है।

पाठगत प्रश्न- 18.3

1. कोशों में जीव किस प्रकार से तन्मय होता है?
2. गुहाहित क्या होता है?
3. हेयोपादेय रहित क्या होता है?
4. चक्षुष किसका विषय होता है?
5. शरीर तथा इन्द्रियों का नियामक कौन है?
6. शरीर में अहं इस प्रकार की तादात्म्य बुद्धि कौन करता है?
7. वायो विकार का क्या कोश होता है?
8. विज्ञानमय के समान ही उदय तथा अस्तमय कौन होता है?
9. संशायात्मिका अन्तः करणप्रवृत्ति क्या होती है?
10. सभी आनन्द का हेतु कौन है?
11. न तस्य अस्ति वेत्ता। यहाँ किसका वेत्ता नहीं होता है?

पाठ सार

पञ्चकोश विवेक इस पाठ का विषय है। पहले तो अध्यारोप क्या है तथा अपवाद क्या है इसका सुष्ठु विचार किया गया है। उनदोनों के विचारों के बिना पञ्चकोश विवेक नहीं किया जा सकता है। ब्रह्म के प्रतिपादन के लिए पञ्चकोशों की कल्पना की गई है। ब्रह्म निरूपाधिक निर्गुण तथा निर्धर्मक होता है। इस प्रकार के ब्रह्म का प्रतिपादन नहीं किया जा सकता है। इसलिए निर्गुण के प्रतिपादन के लिए सगुण का प्रतिपादन अपेक्षित है। इसीप्रकार निरूपाधिक के प्रतिपादन के लिए सोपाधिक का प्रतिपादन अपेक्षित है। सोपाधिक ब्रह्म के ज्ञान के द्वारा निरूपाधिक दुर्विज्ञेय ब्रह्म का ज्ञान हो जाता है इस कारण से पञ्चकोश कल्पित किये गये हैं। वो इस प्रकार से अन्नमयकोश, प्राणमयकोश, मनोमयकोश, विज्ञानमयकोश, तथा आनन्दमयकोश। वहाँ पर एक एक कोश का लक्षण पहले कहा जा चुका है। तथा प्रत्येक का विस्तार पूर्वक वर्णन किया जा चुका है। किसी कोश का जाग्रत अवस्था में प्राधान्य है तो कोई कोश किस अवस्था मे प्राधान्य है इस प्रकार का विचार किया गया है। इस प्रकार से उपर से लेकर के एक-एक कोश आत्मव्यतिरिक्त होता है। इस प्रकार से आत्मा तथा अनात्म का विवेक प्रदर्शित किया गया है। शरीर का नाश सम्भव होने से अविनाशी आत्मा नहीं होता है ऐसा कहकर अन्नमय का आत्मत्व में निरास किया गया है। प्राण क्रियावान होता है। इसलिए निष्क्रिय आत्मा प्राणमय कोश न ही होता है इस प्रकार से उसका निरास किया गया है। कामक्रोधादि मन के विकार होते हैं। इसलिए निर्विकारी आत्मा का मनोमय कोश कभी भी नहीं होता है ऐसा कहकर के मनोमय कोश से भी आत्मा का निरास किया गया है। विज्ञानमय के समान ही उदय तथा अस्तमय आत्मा नहीं होती है ऐसा कहकर विज्ञानमय कोश

ध्यान दें:

का आत्मत्व निरास किया गया है। अन्त मे आनन्दमय कोश आत्मा नहीं है इस प्रकार से प्रतिपादित किया गया है। आनन्दमय कोश अनित्यत्व से युक्त होता है। तथा आत्मा अनित्य होती है। पाठ के अन्त में पञ्चकोश के अतिरिक्त आत्मा का भी स्वरूप प्रदर्शित किया गया है।

आपने क्या सीखा

- अध्यारोप के स्वरूप को जाना,
- अपवाद तात्पर्य को जाना,
- आत्मा तथा अनात्मा का विवेक ज्ञान प्राप्त किया।
- कोश कितने होते हैं यह जाना,
- अन्नमयादि कोशों के लक्षणों को जाना।
- ब्रह्म के सोपाधिक तथा निरुपाधिक भेदों को जाना।
- अरुन्धती नक्षत्र द्वारा ब्रह्म के प्रतिपादन को समझा।

पाठान्त प्रश्न

1. अध्यारोप तथा अपवाद के द्वारा निष्प्रपञ्च क्या होता है?
2. पञ्चकोशों के स्वरूप का वर्णन कीजिए।
3. अरुन्धतीनक्षत्रनिदर्श का वर्णन कीजिए।
4. अन्नमय कोश का अनात्मत्व का प्रतिपादन कीजिए।
5. प्राणमय कोश के अनात्मत्व का प्रतिपादन कीजिए।
6. विज्ञानमय कोश के आत्मत्व का निरास कीजिए।
7. आनन्दमय कोश के आत्मत्व का निरास कीजिए।
8. आत्मा के पाँच कोश के अतिरिक्त प्रबन्ध की रचना कीजिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर 18.1

1. जीवात्मा का तथा परमात्मा का एक्य
2. आगमशास्त्र
3. ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या
4. निष्प्रपञ्च
5. वस्तु में अवस्तु का आरोप
6. रज्जु
7. ब्रह्म
8. अज्ञानादिसकलजडसमूह

ध्यान दें:

9. अज्ञान अनिर्वचनीय त्रिगुणात्मक तथा ज्ञाननिवर्त्यक होता है
10. वस्तुविवर्त अवस्तु का वस्तुमात्रत्वावधारणम् अपवाद कहलाता है।
11. ब्रह्मज्ञान में
12. अरुन्धती नक्षत्र न्याय

पाठगत प्रश्नों के उत्तर 18.2

1. पाँच
2. अन्नमयकोश, प्राणमयकोश, मनोमयकोश, विज्ञानमयकोश, आनन्दमयकोश,।
3. अन्नमय
4. हृदय देश में
5. आत्मा
6. प्राण
7. विश्व का व्यष्टिस्थूलशरीर अन्नमयकोश होता है।
8. पाँच प्राण कर्मेन्द्रियों के सहित प्राणमयकोश होता है।
9. ज्ञाननेन्द्रियों के साथ मन को मिलाकर के मनोमय कोश होता है
10. बुद्धिज्ञानेन्द्रियों के सहित विज्ञानमयकोश होता है।
11. अविद्यापरिणामरूपा वृत्ति आनन्दमय कोश होती है।
12. कोशवदाच्छादकत्व से कोश इस प्रकार के नाम का प्रयोग होता है।
13. जीव
14. पाँच
15. छः
16. मन
17. अविद्या का
18. संसार
19. बन्ध तथा मोक्ष का
20. मन
21. मन
22. मन
23. बुद्धि
24. विज्ञानमयकोश

ध्यान दें:

25. बुद्धि
26. उपाधि के द्वारा
27. तीन
28. सत्त्वगुण रजोगुण तथा तमोगुण
29. प्रियं मोद तथा प्रमोद
30. प्रियम्
31. इष्ट वस्तु लाभ होने पर
32. सुषुप्ति में

पाठगत प्रश्नों के उत्तर 18.3

1. तादात्म्याध्यासात्
2. ब्रह्म
3. ब्रह्म
4. रूप
5. आत्मा
6. मूढ
7. प्राणमय
8. आत्म का
9. मन
10. आत्मा
11. आत्म का